शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अप्रैल 2013

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में मानवतावाद

प्रा.पटेल सुरेश भाई एच.
हिन्दी विभागाध्यक्ष
एम. एम. चौधरी आर्ट्स कालेज, राजेंद्र नगर
तहसील भीलोड़ा, साबरकांठा, गुजरात

शोध संक्षेप

मूर्धन्य साहित्यकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी श्रेष्ठ निबंधकार और उपन्यासकार के रूप में ख्यात हैं। उनके साहित्य में सर्वत्र मानवता व्याप्त है। वे एक निष्पक्ष पक्षपाती साहित्यकार हैं, जो हमेशा शोषित, पीड़ित के पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं। मनुष्य की मानवता के विस्तार में साहित्य को उन्होंने सदैव सर्वोपरि माना है। साहित्य मनुष्य के चित्त को परिशुद्ध करता है। यहां पर उनके साहित्य में मानववाद की पड़ताल की गई है।

प्रस्तावना

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिन्दी साहित्य के ज्योति स्तंभ में से एक हैं। उन्होंने अनेक विधाओं और विषयों पर अपनी लेखनी चलाकर हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित किया है। उनके विचारों में संशय अथवा अस्पष्टता का सर्वथा अभाव है। वे लोक-मंगल को ध्येय बनाकर चलनेवाले चिंतकों में प्रमुख हैं। शास्त्रीय परंपरा को उपेक्षित कर उच्छृंखलता को नवीनता के रूप में प्रस्तुत करने वाले चिंतकों से भिन्न; परंपरा की यात्रा को अग्रसर करने वाले आचार्यों में द्विवेदीजी का स्थान अन्यतम हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के चिंतन-निष्कर्ष का निकश मानवता है। वे ऐसे सांस्कृतिक मनीषी हैं, जिनके समक्ष समग्र सभ्यता एक व्यक्ति के रूप में उपस्थित होती है। साहित्य की किसी भी विधा का किसी भी दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया जा रहा हो, उसे द्विवेदीजी सर्वत्र मानव समाज, मानव जीवन, मानव स्वभाव का अभिन्न अंग मानकर ही चलते हैं। साहित्य का इतिहास हो या निबंध, उपन्यास हो या समीक्षा, अनुवाद हो या शोध, कविता हो या भाषण द्विवेदीजी की विचारधारा का मूल केंद्र मानव ही रहा है। उन्होंने कहा है, "वास्तव में हमारे अध्ययन की सामग्री प्रत्यक्ष मनुष्य है। अपने इतिहास में इसी मनुष्य की धारावाही जय-यात्रा पढ़ी है, साहित्य में इसी के आवेगों, उद्वेगों और उल्लासों का स्पंदन देखा है। राजनीति में इसकी लुकाछिपी के खेल का दर्शन किया है। अर्थशास्त्र में इसकी रीढ़ की शक्ति का अध्ययन किया है। यह मनुष्य का वास्तविक लक्ष्य है।"1 वस्तुतः द्विवेदीजी के अनुसार साहित्य का प्रयोजन मानव को वास्तविक रूप में मनुष्य बनाना है। वे साहित्य के माध्यम से समस्त मानव-जाति का परिष्कार, उसकी सर्वांगीण उन्नति, उसका हित करना चाहते हैं, अतः भावनात्मक धरातल पर उसके समस्त अभावों को दूर करना ही साहित्य का प्रयोजन है, "क्या साहित्य और क्या राजनीति, सबका एकमात्र लक्ष्य इसी मनुष्यता की सर्वांगीण उन्नति है।"2 द्विवेदीजी श्रेष्ठ साहित्य की परख पाठक पर पड़े मानवीय प्रभाव से करते हैं। वस्तुतः साहित्य का स्वरूप उनके प्रयोजन संबंधी सिद्धांतों के अनुरूप ही हैं। जो साहित्य उस प्रयोजन को पूर्ण करता

है, वही श्रेष्ठ साहित्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। एक जगह पर वे कहते हैं, "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूं। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।"3 वस्तुतः इन उक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके समक्ष मानव जाति की तीन कोटियां हैं: प्रथम दीन-हीन, दुर्बल तथा परमुखापेक्षी मानव जो शोषित होकर पशु सरीखा जीवन व्यतीत कर रहे हैं, द्वितीय वे जो दया-विवेक-धर्महीन वृत्तियों के कारण क्रूर एवं कठोर कृत्य करते हैं तथा शोषक और पीड़क के रूप में राक्षसी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। तृतीय कोटि में वे मनुष्य हैं जो न शोषित हैं न शोषक हैं न पीड़ित हैं न पीड़क हैं। वे लोग दया-धर्म, विवेक-युक्त संतुलित मानवीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। द्विवेदीजी के अनुसार साहित्य का प्रयोजन प्रथम वर्ग को बल-शक्ति-साहस, ज्ञान तथा प्रकाश देकर उन्नत करे तथा द्वितीय वर्ग के मनुष्यों को दया-विवेक-धर्म सिखा उनके हृदय को कोमल बना, उन्हें भी संतुलित मानव बनाता है। इस प्रकार साहित्य मनुष्य के समस्त अभावों की पूर्ति कर उसे वास्तविक मनुष्य बनाता है।

द्विवेदीजी की मानवतावादी दृष्टि यथार्थोन्मुखी है। वे अपनी मानवतावादी दृष्टि के निरूपण के लिए आदिकाल में इतिहास का सहारा लेते हैं तो निबंधों में संस्कृति सहित ज्ञान-विज्ञान का। द्विवेदीजी भूत, वर्तमान और भविष्य में कुशल संयोजन बैठाने में सफल साबित होते हैं। वे अपने संपूर्ण जीवन में एक साहित्यकार के लिए मानव सहानुभूति से परिपूर्ण होना आवश्यक मानते हैं। उनके चिंतन का यह निष्कर्ष देखने योग्य है, "जो साहित्यकार अपने जीवन में मानव सहानुभूति से परिपूर्ण नहीं है और जीवन के विभिन्न स्तरों को स्नेहार्द्र दृष्टि से नहीं देख सका है, वह बड़े साहित्य की सृष्टि नहीं कर सकता।"4 द्विवेदीजी के साहित्य में मनुष्य ही केंद्र स्थान में रहा है।

द्विवेदीजी उत्तम साहित्यिक दृष्टिकोण की चर्चा करते हैं तो उनके समक्ष मानवता का प्रखर तेजवान रूप ही रहता है। द्विवेदीजी का मनुष्य केवल देवत्व का आकांक्षी नहीं बल्कि कई स्थल पर देवता से भी बड़ा है, क्योंकि उसमें ऐसे गुण हैं, जिसका देवता में अभाव है। द्विवेदीजी का, "मनुष्य क्षमा कर सकता है देवता नहीं कर सकता। मनुष्य हृदय से लाचार है, देवता नियम का कठोर प्रवर्तक है। मनुष्य नियम से विचलित हो जाता है पर देवता की कुटिल भृकुटि नियम की निरंतर रखवाली करती है। मनुष्य इसलिए बड़ा होता है कि वह गलती कर सकता है, देवता इसलिए बड़ा होता है कि वह नियम का नियंता है।"5 मानव को द्विवेदीजी ने सृष्टि का विषिष्ट एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्राणी माना है। इनकी दृष्टि में मानव सृष्टि का अजेय प्राणी है। उसकी दुर्दम्य जिजीविषा उसे निरंतर विकासोन्मुख बनाती है। वह जो भी चाहे बन सकता है, जो भी चाहे कर सकता है। यही कारण है कि द्विवेदीजी जब मानव की शक्ति की सीमा निर्धारित करना चाहते हैं तो उन्हें कोई सीमारेखा नहीं मिलती। उनकी दृष्टि के समक्ष जीवतत्व के उद्भव और मानव रूप में उसकी परिणति का संपूर्ण चित्र अंकित हो जाता है।

उपन्यासों में मानवतावाद

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के चारों उपन्यासों

के अधिकांश पात्र मानवीय गुणों से ओतप्रोत हैं। वे मानवतावादी उपन्यासकार हैं। मानव कल्याण की मूल भावना को लेकर ही उन्होंने साहित्य रचना की है। नारी उद्धार के पीछे भी उनकी यह भावना है। यह मानवतावादी स्वर इस उपन्यास में पूरी तरह छाया हुआ है। द्विवेदीजी के इस मानवतावादी दृष्टिकोण में व्यक्ति-स्वातंत्र्य एवं नारी स्वातंत्र्य का बोध महत्वपूर्ण है। आर्यक व मृणाल दोनों एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट होने के बावजूद लोकाचार की बाधा के कारण विवाह बंधन में नहीं बंध पा रहे थे। वृद्ध गोप को संतुष्ट कर पाने का उपाय दिनरात सोचते रहे। वे यह मान रहे थे कि लोकाचार इसमें बाधक हो तो भी वह करणीय है। मृणाल व आर्यक के इस संबंध को द्विवेदीजी ने ऊंच-नीच या जाति--पांति के आधार पर नहीं देखा वरन् शुद्ध मानवीय दृष्टिकोण से देखा है। अंत में यह विवाह संपन्न होता है। यह अंतर्जातीय विवाह की ओर संकेत है। पर इच्छा के विरुद्ध संपन्न हुए विवाह को द्विवेदीजी स्वीकृति नहीं देते। चंदा स्वयं ऐसे विवाह के विरुद्ध बुलंद स्वर में कहती है, "मेरा विवाह मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे पिता ने एक ऐसे मनुष्य रूपधारी पशु से कर दिया जो पुरुष है ही नहीं। मैं उसे पति नहीं मान सकती। हल द्वीप के मुंह में कालिख लगती है। तो सौ बार लगा करे। जो समाज इस प्रकार के विवाह की स्वीकृति देता है, वह उसके मुंह में कालिख पहले ही पोत लेता है।"6

द्विवेदीजी का मानवतावाद व्यक्तिपरक नहीं है। वह वृहत्तर मानव समुदाय के विकास की ओर इंगित करता है। यह मानवतावाद मनुष्य में पुरुषार्थ तथा वैचारिक चेतना को प्रोत्साहन देता है। द्विवेदीजी ने 'पुनर्नवा' में यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य की चरम उपलब्धि देवत्व की प्राप्ति है। मनुष्य जड़ता से चेतन की ओर जाता है। पशुत्व या जड़त्व का परिहार ही मनुष्यत्व ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ रूप है। उन्होंने अपने स्पष्ट विचार व्यक्त किए हैं कि मनुष्य नितांत पशुता में जीवित नहीं रह सकता। उसका स्वभाव ही उपर की ओर जाता है, वह एक सामाजिक प्राणी है। अतः समाज का संतुलन बनाये रखने के लिए उसके मनुष्यत्व एवं उसके देवत्व रूप की अपेक्षा है। द्विवेदीजी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में विष्व मानवता को रागमय बनाने का संकल्प है। इस उपन्यास में आधुनिकता का स्वर सुना जा सकता है। भट्टिनी के जातिवाद विरोधी आक्रोश में आधुनिकता का स्वर है। भट्टिनी एक नये समाज के निर्माण की कल्पना करती है, जहां उसे सामाजिक न्याय मिल सके। भट्टिनी के रूप में द्विवेदीजी का न्याय और समतायुक्त व्यक्तित्व प्रस्फुटित हुआ है। भट्टिनी के साथ साथ बाणभट्ट के निपुणिका, महामाया इत्यादि पात्र भी इसी विषाल मानवतावाद के आदर्ष को व्यवहार में परिणित करने के लिए संघर्षरत हैं। द्विवेदीजी बाबा और बाण के मध्य जो वार्तालाप इस उपन्यास में प्रस्तुत करते हैं उसमें मानवतावाद के विविध पक्षें पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। डा.रामदरश मिश्र के शब्दों में, "बाबा साहस के साथ मानवीय जीवन ध्वनियों को ऊंचा मूल्य प्रदान करते हैं।"7

द्विवेदीजी ने 'चारुचंद्रलेख' में भी मानवतावाद के स्वर पर अपनी लेखनी चलाई है। द्विवेदीजी का मानवतावाद छोटे व निम्नजाति के उपक्षित व्यक्तियों के भीतर भी आत्मगौरव का भाव जगाकर उन्हें समाज में उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करता है। द्विवेदीजी साधारणता में

महानता के दर्शन करते हैं। 'चारुचंद्रलेख' में एक जगह पर वे कहते हैं, "एक साधारण किसान जिनमें दया, माया है, सच-झूठ का विवेक है और बाहर-भीतर एकाकार है। वह भी बड़े से बड़े सिद्ध से ऊंचा है। चरित्र बल समस्त शक्तियों का अक्षय भण्डार है।"8

'अनामदास का पोथा' में भी नव मानवतावाद के रूप में यह स्वरूप प्रकट हुआ है। नव मानवतावाद के दो मुख्य बिंदु हैं। विष्व चेतना के प्रति सहानुभूति तथा मानव सेवा। द्विवेदीजी ने अपने उपन्यासों में जिस धर्म, दर्षन, साधना को अपनाया है, वह मनुष्य के सामाजिक जीवन में साधक है, क्योंकि मनुष्य का कोई भी 'धर्म, दर्षन भक्ति या साधना यदि मनुष्य के सहज सामाजिक जीवन प्रवाह अथवा मनुष्यता की सिद्धि में अवरोधक सिद्ध होती है तो वह मनुष्य कहलाने की अधिकारिणी नहीं है। इन सब में समष्टि, मनुष्यता की हित-साधना सर्वोपरि है। एक जगह पर ऋंतभरा के मुंह से पाप और पुण्य की व्याख्या भी समाज को दृष्टि में रखकर द्विवेदीजी ने की है, "जिस कार्य से किसी को शारीरिक या मानसिक कष्ट होता है, वह पाप कार्य है पर जिससे किसी का दुःख दूर हो, उसका इहलोक और परलोक सुधर जाये, रोगी निरोगी हो जाए, दुखिया सुखी हो जाए, भूखा अन्न पाये, प्यासा जल पाये, कमजोर लोग आष्वासन पायें, वे सब पुण्य है, क्योंकि इनसे अंतःकरण में विराजमान परम देवता प्रसन्न होते हैं।"9 मानवतावादी इस कथन से स्पष्ट होता है कि द्विवेदीजी की दृष्टि में मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। द्विवेदीजी के साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि वे मानवतावादी आलोचक है। डा.रामदरश मिश्र ने डा.द्विवेदीजी के विचारों का विवेचन करते हुए कहा है, "द्विवेदीजी मानवतावादी आलोचक हैं। वे मनुष्य की समस्त सामाजिक उपलब्धियों को साहित्य की सामग्री मानते हैं, किंतु वे साहित्य के मूल तत्वों के साथ उनका वैज्ञानिक संबंध जोड़ते हैं। आदर्शवादियों या उपयोगितावादियों की तरह ऊपर से आरोपित नहीं करते।"10 आचार्य द्विवेदी मानव मात्र को जोड़ने वाले साहित्य की आराधना को ही श्रेयस्कर मानते हैं। वे साहित्य को वृहत्तर मानवीय चेतना का अनुकरण मानते हैं, क्योंकि जीवन से उद्भूत साहित्य मनुष्य की सौंदर्य साधना है। जो मनुष्य को सुंदर बनाता है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से हम यह कह सकते हैं कि द्विवेदीजी मानवतावाद के शक्तिषाली समर्थक हैं। वे मानव को सबसे श्रेष्ठ मानते हैं। वे मानवता के सच्चे पुजारी हैं। उनका साहित्य किसी वर्ग विशेष के लिए न होकर समष्टि के लिए है। वे अपने में सभी को समेट लेते हैं। निस्संदेह मनुष्य की केंद्रित यह दृष्टिकोण द्विवेदीजी को मानवतावादी साहित्य चिंतक के रूप में स्थापित करता है। उनमें सर्जन की सरसता चिंतन की प्रखरता एवं मानवतावादी जीवन की दृष्टि की उदारता आदि के द्वारा साहित्य की सृष्टि करने वाले का स्थान बीसवीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक प्रकाश स्तंभ के रूप में माना जाएगा।

संदर्भ

1 अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद पृष्ठ 182
2 अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृष्ठ 41
3 अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती

प्रकाशन, इलाहबाद, पृष्ठ 166
4 विचार और वितर्क, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाश, नई दिल्ली, पृष्ठ 129
5 मेघदूत, एक पुरानी कहानी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 4
6 पुनर्नवा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 125
7 हिन्दी उपन्यास: एक अंतर्यात्रा, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली, पृष्ठ 175
8 चारुचंद्रलेख, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 135
9 अनामदास का पोथा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 355
10 हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन|